

पंचम अध्याय

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में निहित धार्मिक जीवन

- i) धार्मिक मान्यताएँ
- ii) धर्म का समाज में हस्तक्षेप
- iii) धर्मांतरण: कारण और प्रभाव

i) धार्मिक मान्यताएँ

भारत एक बहुभाषी देश है जहाँ सभी धर्मों के लोग निवास करते हैं। आदिवासी समुदाय इससे इतर नहीं है। इनके संबंध में कई भ्रांतियाँ फैली हुई हैं कि आदिवासियों का अपना कोई धर्म नहीं है। इसलिए अन्य धर्मों के लोगों ने उन्हें अपने-अपने धर्म की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है। वास्तव में आदिवासी समाज का अपना धर्म है और उनकी अपनी धार्मिक मान्यताएँ हैं। किन्तु इस समाज में धर्म का कॉन्सेप्ट उस रूप में नहीं जिस रूप में हम अन्य धर्मों में देखते हैं। आदिवासी समुदाय 'निसर्ग' धर्म का पालन करते आए हैं जिसे डॉ. रामदयाल मुंडा ने 'आदिधरम' कहा है। उनके इस 'आदिधरम' और मान्यताओं की चर्चा आगे करेंगे।

आदिवासी समुदाय में धर्म का कॉन्सेप्ट अन्य धर्म की तुलना में भिन्न है। यह स्वाभाविक है कि जब धर्म भिन्न होंगे तो धार्मिक मान्यताएँ भी भिन्न होंगी। इनके यहाँ ईश्वर, भगवान, अल्लाह, मसीह, गॉड जैसा कोई रूप नहीं है। इनके देवी-देवता बोंगा कहलाते हैं। ये बोंगा सूर्य, चाँद, तारे, जल, पर्वत आदि हो सकते हैं अर्थात् प्रकृति के समस्त अवयव इनके लिए पूजनीय हैं। इनके यहाँ अवतारवाद जैसी कोई धारणा नहीं है। बोंगा शब्द अपने आप में एक व्यापक रूप है। बोंगा अवतारवाद के स्थान पर एक शक्ति के रूप में कार्य करता है जो सर्वथा अन्य धर्मों, जातियों से बिल्कुल परे है। यह पूर्वज ही हैं जो हमेशा उनकी रक्षा करते हैं। प्रसिद्ध लेखक विनायक तुमराम का कथन इस संदर्भ में द्रष्टव्य है - "प्रचलित धर्मों में भगवान के जो रूप-लक्षण बताए गये हैं, उनसे बोंगा शक्ति के रूप-लक्षण सर्वथा भिन्न है। इसलिये बोंगा शक्ति के अवतारों का जिक्र उनकी विश्वास व्यवस्था में नहीं मिलता। क्योंकि उनके बोंगा उनके पूर्वजों के रूप में उनके प्रेरक एवं रक्षक है। संक्षेप में, आदिवासियों के बोंगा उनके स्पिरीट्स (Spirits) हैं जो हमेशा उनके साथ रहते हैं।"¹ इन सबके पीछे प्रकृति प्रेरक का कार्य करती है जो समस्त प्राणी को प्रेरणा देती है। समस्त ऊर्जा का स्रोत एकमात्र प्रकृति ही है। ध्यातव्य है कि प्रकृति की छाँव में कभी भी किसी ने शासन नहीं किया और न ही इसके

अस्तित्व आदिवासियों की धार्मिक मान्यताओं में प्राप्त होते हैं। इनकी धार्मिक मान्यता के अनुसार प्रकृति असाधारण है जो उनके जीवन का अभिन्न अंग है तथा उनका मार्ग दर्शन करती है। उदाहरण के लिए मुंडा समाज को लें, तो यह समुदाय 'सिंगबोंगा' की पूजा महत्वपूर्ण रूप से करते हैं। उनपर उनकी आस्था अटूट और अनन्य है। उनकी मान्यता है कि सिंगबोंगा ने मानव का सृजन किया है और जीवनयापन करने में उनकी मदद की। उन्होंने मनुष्यों पर कभी शासन नहीं किया, बल्कि एक मार्गदर्शक के रूप में भूमिका अदा की।

आदिवासी समुदाय को अन्य समुदाय से इस रूप में भिन्न बनाती है कि इनके यहाँ स्वर्ग या नरक जैसी कोई अवधारणा नहीं है। अच्छे कर्म करने से स्वर्ग प्राप्त होता है और बुरे कर्म करने से नरक लोक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं - ऐसा शास्त्र, पुराण जैसे लिखित धार्मिक ग्रंथों में वर्णित है तथा इसका अनुसरण पूर्ण श्रद्धा के साथ गैर आदिवासी समाज करता है। कहने का अभिप्राय यह है कि आदिवासी समाज स्वर्ग-नरक की कल्पना में विश्वास न कर मृत्यु को शाश्वत सत्य मानता है। जो भी सच है वह इस धरती पर है, इससे इतर सब कोरी कल्पना है। इनके यहाँ लोग भोग-विलास की जिंदगी नहीं जीते हैं, सादगी का जीवन व्यतीत करते हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण मुंडा समाज है। इनके समाज में लोगों के साथ क्रूर व्यवहार नहीं किया जाता था और न ही उन्हें भयंकर यातनाएँ दी जाती थी। इसलिए इनके धर्म में स्वर्ग और नरक जैसी कोई कल्पना नहीं की जाती थी। इस संदर्भ में हरिराम मीणा का कथन द्रष्टव्य है - "मृत्यु के बाद मनुष्य किसी परलोकी स्वर्ग-नरक में न जाकर अपने ही घर में वापस आता है और अमूर्त शक्ति के रूप में घरवालों को प्रेरणा देता रहता है। अगर वह महान कर्म करने वाला व्यक्ति रहा होता है तो लोक देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।"² अर्थात् आदिवासी समुदाय की धार्मिक मान्यताओं में ईश्वर के मूर्त रूप का कोई स्थान नहीं है। सारे पर्व-त्योहार अत्यंत सरल तरीके से मनाते हैं जहाँ आडम्बर अथवा दिखावे का कोई स्थान नहीं है। सब कुछ समानता और सामूहिकता की नींव पर टीका हुआ है। यहाँ कोई किसी का शोषण नहीं करता है और न ही किसी का किसी पर आधिपत्य रहा। यह जंगल, जमीन या

भूमि आदिवासी समुदाय का सर्वेसर्वा है। भूमि अर्थात् धरती पर पैर रखने के पूर्व आज्ञा लेकर अथवा क्षमा याचना करके ही नृत्य का आरंभ किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि धरती उनके लिए जितनी पूजनीय या वंदनीय है उसी प्रकार प्रकृति, जो समस्त शक्तियों से मिलकर बनी है, उसके प्रति वे अत्यंत समर्पित और प्रतिबद्ध हैं। चूंकि वे लोग अपने पूर्वजों को मृत्योपरांत अपने घर में दफनाते हैं। अतः इसे आत्मा से जोड़कर देखा जाने लगा है जबकि उनके यहाँ इस प्रकार का कोई कॉन्सेप्ट ही नहीं है। इसी प्रकार पुनर्जन्म की अवधारणा आदिवासी समाज में कभी नहीं रही है। मरने के बाद आत्मा का पुनर्जन्म होता है, इस धारणा का आदिधरम में कोई स्थान नहीं है।

आदिवासी धर्म का मुख्य आधार ही प्रकृति है। प्रकृति के नियमों का पालन करना प्रत्येक मनुष्य तथा प्राणी का कर्तव्य है। महंत या पुजारी का आदिवासी धर्म में कोई स्थान नहीं है। पाहन की भूमिका केवल अनुष्ठान सम्पन्न कराने तक सीमित है। ईश्वर से सीधे जुड़ने की स्वतन्त्रता आदिवासी धर्म प्रदान करता है। धर्म के पुरोधा कहे जाने वाले पंडितों का हस्तक्षेप समाज में परिलक्षित नहीं होता है। इस संदर्भ में डॉ. रामदयाल मुंडा का कथन द्रष्टव्य है - “बिना किसी मध्यस्थता (पंडित, मौलवी, पादरी इत्यादि) के परमेश्वर से सीधे जुड़ने की अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता। आदिवासी के सभी अनुष्ठान न्यूनतम कर्मकांड से सम्पन्न होते हैं।”³ आदिवासी समाज किसी धर्मग्रंथ का अनुसरण कर नहीं चलते हैं, बल्कि जीवन में जिस प्रकार की नैतिकता, व्यवहार, जीवन-मूल्य आदि को अपना कर चलते हैं वही उनका धर्म है। आदिवासियों के देवी-देवता किसी मंदिर, मस्जिद, मठ आदि में निवास नहीं करते और न ही उनका कोई मूर्त रूप विद्यमान है। उनके बोंगा तो सर्वव्याप्त हैं, वह सर्वत्र अनुभव किए जाने योग्य है। उनके बोंगा वृक्ष में भी हो सकते हैं, चाँद-तारों में भी, धरती और आकाश में भी उनकी उपस्थिति निहित है। प्रकृति सर्वशक्तिमान और समस्त ऊर्जाओं का स्रोत है। अतः आदिवासी समुदाय पूर्णतः बंधन रहित धार्मिक मान्यताओं के स्वामी हैं ।

प्रकृति में उनकी गहरी आस्था होने के कारण वे बोंगा से रूबरू होते हैं। बोंगा केवल प्रेरणादायक शक्ति नहीं है, बल्कि रक्षक और पूजक है। आदिवासियों का विश्वास है कि प्रकृति मनुष्य के साथ जातिभेद, छुआछूत का भेदभाव नहीं करती, बल्कि प्रकृति कण-कण में निवास करती है। उनके समाज में समानता, भाईचारा और सहअस्तित्व का भाव है जो आदिवासी समाज को एक साथ बाँधे रखती है और स्वतंत्रता प्रदान करती है जिससे वे अपना कार्य निर्विघ्न रूप से कर सके। उनका मानना है कि केवल मनुष्यों में ऊर्जा का संचार नहीं होता है, बल्कि निर्जीव वस्तुओं में भी ऊर्जा विद्यमान रहती है। यही कारण है कि आदिवासी समुदाय इन चेतनापूर्ण अवयवों की पूजा करता है। आदिवासियों का मानना है कि चेतना या ऊर्जा प्रकृति के प्रत्येक अंश में होता है चाहे वह कोई वृक्ष ही क्यों न हो। इसलिए उनकी दृष्टि में ये सब (पशु, पक्षी, वृक्ष, चाँद, तारें, पत्थर) सम्मान के योग्य हैं। सम्मान देने से सम्मान बढ़ता है, सम्मान के बदले सम्मान मिलता है। यह संसार लेन-देन के आधार पर टिका हुआ है, तभी प्रकृति का संतुलन बना रहता है, यदि केवल हम लेते रहेंगे और बदले में कुछ भी न दे, तो संतुलन बिगड़ने की पूर्ण संभावना रहती है जिसका दुष्प्रभाव प्राकृतिक आपदाओं के रूप में देखने को मिलता है। “आदिवासियों का विश्वास है कि पहाड़ में विशेष पत्थरों, पेड़ों, जलाशयों, कटे हुए पेड़ के अवशेषों में शक्ति विद्यमान रहती है। उसे लोग बोंगा कहते हैं। आदिवासियों का विश्वास है कि इन बोंगाओं को संतुष्ट नहीं करने पर जब आदिवासी नर-नारी अपने कार्य के दौरान पहाड़, जंगल एवं विभिन्न स्थानों में घूमेंगे या फिरेंगे तो उस समय उनमें अचानक भय पैदा हो सकता है या उनके शरीर में पीड़ा उत्पन्न हो सकती है। इससे उनके जीवन में परेशानी हो सकती है।”⁴ अतः बोंगा का स्थान इनके समुदाय में पूजनीय है।

जाहेरथान या थान आदिवासियों का पवित्र पूज्य स्थल है। सरना जैसा ही यह एक पूजा स्थल है जहाँ शाल वृक्ष बहुतायत में होते हैं। ‘जाहेरथान’ गाँव के मुहाने पर होता है और गाँव के अन्दर एक पूजास्थल होती है। शादी-ब्याह हो, चाहे कोई भी शुभ कार्य हो, सबसे पहले वहाँ के देवता को पूजा जाता है। वहाँ कोई मूर्ति नहीं होती है। शाल पेड़ का एक खूँटा होता है और

वह शाल पेड़ का खूँटा सदियों से होता है और उसे पूजा स्थल के रूप में चुन लिया जाता है। कोई भी पर्व हो या त्योहार हो, पहले वहाँ पूजा कर ली जाती है। एक तरह से वह गाँव का पूजा-स्थल हुआ और जाहेरथान गाँव के बाहर होता है। प्रकृति का प्रत्येक अवयव उनकी आस्था के केंद्र में रहा है। प्रत्येक सजीव-निर्जीव के अस्तित्व में उनकी गहरी आस्था रही है जिसके फलस्वरूप सहअस्तित्व और समानता की भावना का विकास हुआ।

धार्मिक मान्यता के अन्तर्गत पुनर्जन्म की धारणा भी अंतर्निहित है। जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो यह धारणा रहती है कि वह चौरासी लाख योनियों को पार कर मनुष्य रूप में जन्म लेता है, किन्तु आदिवासियों की धार्मिक मान्यता इससे पूर्णतः भिन्न है। उनकी मान्यता के अनुसार मनुष्य मृत्यु के पश्चात् मनुष्य ही बनता है। विभिन्न योनियों में जन्म लेने की धारणा उनकी धार्मिक मान्यताओं में शामिल नहीं है। पूर्वजों को स्मृति में रखने के लिए मृत्यु के पश्चात् उनके नाम पर वे अपने बच्चों का नामकरण करते हैं। डॉ. रामदयाल मुंडा ने आदिधरम पर विस्तार से चर्चा की है। उनका कहना है - “असामाजिक काम करना ही ‘पाप’ है, समाजहित में काम करना ही ‘पुण्य’ है। मृत्यु के बाद आदमी ‘वापस’ आता है अपने घर। देहान्त के बाद वह मात्र दिखाई नहीं देता, किन्तु रहता है अपने ही घर, अपने पूर्वजों के साथ। मृतक की ‘छाया भितराना’ और ‘पत्थल-गड़ी’ का यही अर्थ है। सामाजिक बन कर रहना ही स्वर्ग सुख है। असामाजिक बनना नरक में रहने जैसा है। यह आदमी की पुनर्वापसी है, पुनर्जन्म नहीं।”⁵ कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासी पूर्णतः प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए अपने समाज, संस्कृति, धर्म का निर्वाह करते आए हैं जिसके परिणामस्वरूप यह पृथ्वी, समूचा संसार बचा हुआ है, किन्तु वही आदिवासी समुदाय की संस्कृति नष्ट होने के कगार पर है। इसी आदिवासी संस्कृति को उनके निसर्ग धर्म अर्थात् आदिधर्म ने ही जीवित रखा है जिसे स्वीकार करना गलत नहीं है। इस संदर्भ में वंदना टेटे के विचार उल्लेखनीय हैं - “गैर आदिवासी विश्व का धर्म और विश्वास का मनुष्य इस दंभ से भरा है कि वह 84 लाख योनियों में सबसे श्रेष्ठ है। लेकिन आदिवासी विश्वास श्रेष्ठता के इस दंभ से असहमति रखता

है। वह मानता है कि इस समूची समष्टि में वह भी महज एक प्राणी है। अन्य प्राणियों एवं समस्त वस्तुजगत से अपने बौद्धिक सामर्थ्य के बावजूद वह कोई विशिष्ट जीव नहीं है। सारतः हम अपने पुरखों के उस कथन में विश्वास करते हैं जिसके अनुसार इंसान दुनिया का मालिक नहीं, मात्र केयरटेकर है।⁶ उनका कोई लिखित धर्म-ग्रंथ नहीं है जिसका पालन करना अनिवार्य हो। लिखित धर्म-ग्रन्थों में मनुष्य के आचार-विचार, नियम-कानून, वर्जित-स्वीकृत सम्बन्धी नियमों का लेखा-जोखा होता है जिसका पालन करना अनिवार्य है। आदिवासी समाज में धार्मिक ग्रंथ का कोई स्थान नहीं है, क्योंकि उनका पुरखा साहित्य (वाचिक साहित्य) इतना समृद्ध और विशाल है कि नैतिक आदर्शों के समस्त वैशिष्ट्य उनमें स्वतः विद्यमान है और इसका मूल स्रोत प्रकृति है। इसी कारण उनके हृदय में करुणा, दया, परहित आदि जैसे नैतिक आदर्श विद्यमान हैं जो उनके निसर्ग धर्म यानी आदिधरम की देन है।

आदिवासी समुदाय के व्यक्ति बहुत ही सहज और सरल स्वभाव के रहे हैं। यह सहजता, सरलता उन्हें उनके धार्मिक मान्यताओं से प्राप्त हुई है। यद्यपि भिन्न-भिन्न आदिवासी समुदाय की धार्मिक मान्यताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं, किन्तु उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उन्होंने अपने-अपने धर्मों को सहेज कर रखा और संरक्षित किया। ध्यातव्य यह है कि अन्य धर्मों की भांति इस धर्म का कोई संस्थापक नहीं है। धर्म के संरक्षण में किसी एक व्यक्ति की भूमिका नहीं होती है, बल्कि पूरा समुदाय इसका भागीदार होता है। यही कारण है कि व्यष्टि के स्थान पर समष्टि का स्थान सर्वोपरि है जो धर्म का मूल है और यह पुरखों के माध्यम से पीढ़ियों तक उसी रूप में किंचित परिवर्तन के साथ निरंतर हस्तांतरित होती चली आ रही है। आदिवासियों के आदिधरम में आडंबर, झूठी शान, दिखावा आदि विद्यमान नहीं हैं। आदिवासी प्रकृति के प्रति कृतज्ञ रहते हुए अच्छे स्वास्थ्य, अच्छी फसल और अच्छी वर्षा की अभिलाषा रखते हुए पूर्ण हृदय से प्रकृति के प्रति समर्पित रहे हैं। आत्मविश्वास मनुष्य की चेतना के लिए परमावश्यक है। यदि मनुष्य के भीतर आत्मविश्वास विद्यमान नहीं होगा तो वह कुछ भी कार्य करने में असमर्थ होगा। यह आत्मविश्वास धार्मिक मान्यताएँ प्रदान करती हैं। “धार्मिक आस्थाएँ मनुष्य

में आत्मविश्वास जगाती हैं। किसी समुदाय को आत्मसम्मान के साथ जीने के लिए आत्मविश्वास परमावश्यक तत्व है। आदिवासियों के अन्दर सुषुप्त इसी आत्मविश्वास को जगाने के लिए स्वयं आदिवासी समाज वर्षों से अपनी धार्मिक पहचान की मांग कर रहा है।...आदिवासी जानते हैं कि यही राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासियों की पहचान है, जो उन्हें एकसूत्र में बाँध सकती है और यही उनकी सही पहचान है।”⁷ ‘सरना’ शब्द मुंडारी भाषा से लिया हुआ शब्द है जिसका अर्थ ‘पवित्र वृक्षों का समूह’ है। इसे सरना स्थान, जाहेर, जाहिरा, जाहिर स्थान आदि नामों से जाना जाता है। जो भी शुभ कार्य आदिवासी समुदाय में किये जाते हैं, वे सब आपसी भाईचारे को केन्द्र में रखकर मनाए जाते हैं, एक प्रकार से उसमें घनिष्ठता विद्यमान रहती है। जबकि गैर आदिवासी किसी भी प्रकार के धार्मिक कृत्य को नियम के अर्थ में ही लेते हैं। “आदिवासी परंपरा के अनुसार ग्राम निर्माण के पूर्व ‘सरना स्थान’ या ‘जाहिर स्थान’ का निर्माण किया जाता है। हिन्दू समाज में गृह-निर्माण के पूर्व भीत पूजा या शिला पूजन की व्यवस्था है। मगर आदिवासियों में भीत पूजा या शिला पूजा नहीं होती। जिस गाँव में ‘सरना स्थान’ या ‘जाहिर स्थान’ बन चुका है, वहाँ पुनः सरना स्थान निर्माण करने का प्रश्न ही नहीं उठता।”⁸ अर्थात् आदिवासी समाज में नियमों के लिए कोई स्थान नहीं होता है, वहाँ केवल आत्मीयता का वास होता है। कभी-कभी किसी समस्या का निवारण करने के लिए लोग यहाँ एकत्रित भी होते हैं। ‘समर शेष है’ उपन्यास से एक अंश द्रष्टव्य है - “ ‘जाहेर थान’ गाँव से सटे पहाड़ी पर साल के घने जंगल के बीच था, जो दरअसल उनका पूजा स्थल था। लेकिन जरूरत पड़ने पर महत्वपूर्ण मसलों पर फैसला करने के लिए ग्रामीण वहाँ इकट्ठा हुआ करते। गाँव वाले उस स्थान पर जुटने के महत्व को समझते और बुलाए जाने पर सभी काम-काज छोड़कर वहाँ पहुँचते थे।”⁹

सरना धर्म पूर्णतया प्राकृतिक धर्म है जिसके अन्तर्गत प्रकृति के प्रत्येक प्रतीक पूजनीय हैं। प्रकृति ने उन्हें सब कुछ दिया है जिसके लिए वे कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए धन्यवाद देते हैं, जाने-अनजाने उनके द्वारा प्रकृति को किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचे, इसलिए क्षमा

याचना करते हैं अर्थात् जिसके हृदय में क्षमा, दया, कृतज्ञता की भावना विद्यमान हो, उन आदिवासियों का धर्म सरना धर्म कहलाता है। सरना धर्म में किसी प्रकार के आडम्बर और दिखावे का कोई स्थान नहीं है। यह धर्म आदिवासियों के लिए किसी भी प्रकार के देवी-देवता के प्रतीकों के समान है। यह वह धर्म है जिसे सभी स्वतंत्र और स्वच्छंद भाव से अपना सके। सरना धर्म पूरी तरह से प्रकृति पर आधारित है। प्रकृति उन्हें छाया प्रदान करती है, उन्हें आश्रय देती है और साथ-ही-साथ जीवनदान भी प्रदान करती है। उनका धर्म कुरान और बाइबिल की तरह नहीं है, जो एक ही धर्म को मानने के लिए बाध्य करे। प्रकृति का एक व्यापक रूप है जो हर तरह से जीवनदायनी शक्ति का एक प्रतीक है। पेड़-पौधों से उन्हें एक प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है। सरना धर्म धार्मिक ग्रन्थों की तरह रूढ़ नहीं है। धार्मिक ग्रन्थों में दिये गए नियमों से लोग बंध जाते हैं। धार्मिक ग्रन्थों में हर तरह के नियम, रीति-रिवाज, पौराणिक गाथा, सांस्कारिक बंधन इत्यादि दिये होते हैं जिन्हें पढ़कर, सुनकर उन नियमों का पालन करते हैं और अपने दैनिक कार्यों में लिप्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक भिन्न तरीके से प्रशिक्षण दिया जाता है। सरना धर्म के सम्बन्ध में एक प्रसंग विशेषतः उल्लेखनीय है, “सच कहा जाए तो सरना एक धर्म से अधिक आदिवासियों के जीने की पद्धति है जिसमें लोक व्यवहार के साथ पारलौकिक आध्यात्मिकता या अध्यात्म भी जुड़ा हुआ है। आत्मा और पर-आत्म या परम-आत्म की आराधना लोक जीवन से इतर न होकर लोक और सामाजिक जीवन का ही एक भाग है। धर्म यहाँ अलग से विशेष आयोजित कर्मकांडीय गतिविधियों के उलट जीवन के हर क्षेत्र में सामान्य गतिविधियों में गुंफित होता है।”¹⁰

सरना धर्म प्रकृति से इतर नहीं है। लोग इस धर्म को बिना किसी पाबंदियों, बाधाओं के स्वीकार कर सकते हैं। इसमें कृत्रिमता और कल्पना का कोई समावेश नहीं है। प्रकृति मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रकृति के प्रति मनुष्य के मन में श्रद्धा हो या न हो, कोई भी इस धर्म को अपनाने के लिए विवश नहीं कर सकता है। यह धर्म अपने आप में मनुष्य द्वारा बनायी आस्था है। विश्वास और श्रद्धा से किया गया हर कार्य सरना धर्म कहलाता है।

विश्वास, श्रद्धा और भक्ति के प्रति उनकी अपनी धारणा, विचार, मत है। इस संदर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है, “क्योंकि हर व्यक्ति की भक्ति की शक्ति या शक्ति की भक्ति की अपनी अवधारणाएँ हैं। एक समूह का अंग होकर भी आपका वैचारिक और मानसिक व्यक्तित्व समूह से इतर हो सकता है। अपनी वैयक्तिक अवधारणा बनाए रखने और उसे लोक व्यवहार में प्रयोग करने के लिए आप स्वतंत्र हैं। यही सरना धर्म की अपनी विशेषता और अनोखापन है।”¹¹ यह एक ऐसा धर्म है जो जीवन पर्यन्त सामाजिक और नैतिक नियमों से बंधा हुआ नहीं है और न ही यह लोगों को इन नियमों का पालन करने के लिए विवश करता है। व्यक्ति को वैयक्तिक स्वतन्त्रता का लाभ उठाने का अधिकार दिया जाता है ताकि वह निःस्वार्थ और स्वतंत्र भाव से किसी भी प्रकार का कोई कार्य कर सके। “आप धार्मिक, सामाजिक और ऐच्छिक रूप से स्वतंत्र हैं। आपको पकड़ कर न कोई प्रार्थना रटने के लिए कहा जाता है, न ही आपको किसी प्रकार से मजबूर किया जाता है कि आप धार्मिक स्थल जाएँ और वहाँ अपनी हाजिरी लगाएँ और कहे गए निर्देशों का पालन करें। सरना धर्म का कर्मकांड करने के लिए कहीं किसी को न प्रोत्साहित किया जाता है, न ही इससे दूर रहने के लिए किसी का धार्मिक और सामाजिक रूप से तिरस्कार और बहिष्कार किया जाता है। सरना धर्म किसी को धार्मिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक रूप से नियंत्रित नहीं करता है और न ही उन्हें अपने अधीन रखने के लिए किसी भी तरह के बंधन बना कर उन पर थोपता है।”¹²

सरना धर्म को अपनाने के लिए किसी प्रकार का कोई बंधन या नियम-कानून नहीं बनाया गया है। मनुष्य वाहय आडम्बर, रूढ़ियों, कर्मकांड से परे हटकर सरना धर्म से जुड़ा रह सकता है। यदि कोई किसी धार्मिक गतिविधियों अथवा अनुष्ठानों में सम्मिलित नहीं होता है तो उससे प्रश्न नहीं किया जाता है और न ही इस पर आपत्ति व्यक्त की जाती है। सरना को मानने वालों का कोई लेखा-जोखा नहीं होता है। किसी धार्मिक गतिविधियों में शामिल न होने के कारण व्यक्ति को धर्म से निष्कासित अथवा निलंबित नहीं किया जाता है। सरना धर्म में

मनुष्य को प्राकृतिक रूप से स्वीकार किया जाता है। इसके लिए स्वयं को बदलने की आवश्यकता नहीं होती है और न ही किसी प्रकार के कर्मकांडों को धारण करने की आवश्यकता होती है।

धर्म किसी के लिए भी बंधन उपस्थित नहीं करता है, बल्कि सामाजिक कार्यों को एक सही दिशा प्रदान करता है। आदिवासी समाज में लड़का और लड़की में कोई भेद-भाव नहीं किया जाता है। दोनों के बीच समानता को स्थापित किया जाता है। लड़कियाँ अपनी इच्छानुसार विवाह कर सकती हैं और तलाक भी दे सकती हैं। उन्हें इसका पूरा अधिकार है। आदिवासी समाज की यह सबसे बड़ी विशेषता रही है कि समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे मानवीय अधिकार लड़कियों को भी दिये गए हैं और साथ ही सामाजिक कार्य करने का भी अधिकार दिया गया है। किसी प्रकार का कोई बंधन या पाबंदियाँ नहीं हैं। सरना धर्म किसी धार्मिक ग्रंथों पर आधारित नहीं है। इसमें यह समाज और जीवन को एक साथ जोड़े रखता है जिससे दोनों का चक्र चलता रहता है। जो इसका अनुगमन करता है वही अनुगामी कहलाता है। सरना धर्म को मानने वाले भी सरना बनकर अपनी जिंदगी का निर्वाह कर सकते हैं, “क्योंकि उन्हें नियंत्रित करने वाले न तो कोई संगठन है, न समुदाय है, और न ही उन्हें मानसिक और मनोवैज्ञानिक रूप से नियंत्रण में रखने वाली बहुत चालाकी से लिखी गई किताबें हैं। कोई भी आदमी सरना बन कर जीवन-यापन कर सकता है।”¹³

बहुत से लोग सरना धर्म को हिन्दू धर्म का हिस्सा मानते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है, सरना धर्म आदिवासियों के लिए प्रकृति प्रदत्त है। प्रकृति ने उन्हें आश्रय, छाँव, यहाँ तक कि सच्चाई और ईमानदारी से जीवन जीने, मजबूरीवश धर्म को अपनाने पर जोर नहीं दिया है। वे चाहे तो इस धर्म को अपना सकते हैं और नहीं भी, क्योंकि वह लोगों पर बंधन, नियम, रीति-रिवाज का बोझ नहीं डालता है, बल्कि स्वतंत्रतापूर्वक अपनी इच्छानुसार जीवन यापन करने को ही सच्चा धर्म मानता है। आदिवासी मूल्य, विश्वास और अध्यात्म को ही मूल आधार मानता है। इन्हीं विचारों को अपने जीवन में अपना लेता है। लेकिन गैर आदिवासी धर्म इन सबसे एकदम

भिन्न है, वह तो धार्मिक ग्रन्थों पर विश्वास करता है। उनमें लिखे गए एक-एक शब्द, वाक्य, अवधारणा, विचार दिये गये नियमों का पालन वह भली-भाँति करता है और उसे व्यवहार में लाता है। सरना समाज या धर्म में जाति सम्बन्धी भेद-भाव, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब के बीच अन्तर, सामन्तवाद, पूंजीवाद के लिए कोई जगह नहीं है। इस समाज में समुदाय को बहुत महत्व दिया जाता है। जहाँ लोग समुदाय में रहकर आपसी निर्णय लेते हैं और पर्व-त्योहार, सांस्कृतिक कार्यक्रम, रीति-रिवाज इत्यादि मिलजुल कर मनाते हैं। इनके समाज में शोषण नाम की कोई चीज नहीं है। उनके विचारों में, सोच में कहीं भी शोषण शब्द के लिए कोई स्थान नहीं है, अगर कुछ है तो वह सामुदायिकता, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व की भावना सर्वत्र विद्यमान है।

सरना धर्म को मानने वाले लोग स्वयं के घर में धर्म से संबंधित अनुष्ठानादि स्वयं ही करते हैं। किन्तु सामुदायिक एवं प्रचलित पूज्य स्थलों (सरना स्थल) में पाहन ही पूजा सम्पन्न करता है। वस्तुतः पाहन गैर आदिवासी समाज के पूजा-पाठ कराने वाले पंडितों के समान विशेषाधिकार प्राप्त करके साधारण लोगों पर अपनी सत्ता, अपना नियंत्रण स्थापित नहीं करता है, बल्कि सभी आदिवासी भाई-बन्धुओं की ही भाँति उनके समान जीवन व्यतीत करता है। वह हर समय पाहन के रूप में नहीं रहता है, जब धार्मिक अनुष्ठानादि की बात आती है तब वह पाहन के रूप में पूजा-पाठ आदि करता है। “पूजा की समाप्ति पर अन्य सामाजिक सदस्यों की तरह ही रहता है और सबसे व्यवहार करता है। वह पाहन होने पर कोई विशिष्टता प्राप्त नागरिक नहीं होता है। अन्य धर्मों में पूजा करने वाला व्यक्ति, न सिर्फ विशिष्ट होता है बल्कि वह हमेशा उसी भूमिका में समाज के सामने आता है और आम जनता को उसे विशिष्ट सम्मान अदा करना पड़ता है। सम्मान अदा नहीं करने पर धार्मिक रूप से ‘उदण्ड’ व्यक्ति को सजा दी जा सकती है, उसकी निंदा की जा सकती है।”¹⁴ पाहन दान के रूप में किसी भी प्रकार की वस्तुएँ, धन आदि को स्वीकार नहीं करता है क्योंकि वह स्वयं को अन्य आदिवासी लोगों की

भाँति मानता है। अपना भरण-पोषण स्वयं के परिश्रम से अर्जित करके करता है। किसी पर आश्रित होना न ही आदिवासी समुदाय ने सीखा है और न ही किसी को सिखाता है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि आदिवासी समुदाय का धर्म बंधन एवं आडंबर से सर्वथा मुक्त रहा है। झारखंड के आदिवासी प्रकृति के तत्त्वों को बोंगा मानकर उनकी पूजा करते हैं। आदिवासी और बोंगा का आत्मीय रिश्ता रहा है। बोंगा को स्थापित करने के लिए किसी धर्मपीठ की आवश्यकता नहीं होती है। पेड़ों से आच्छादित सघन वन ही आदिवासियों का पूजन स्थल है जिसे जाहेरथान कहते हैं। आदिवासी समाज का प्रत्येक समूह मनुष्य को अमर मानता है। मृत्यु के बाद भी मनुष्य छाया के रूप में घर में विद्यमान रहता है। आदिवासी धार्मिक मान्यता के अनुसार स्वर्गलोक अथवा नरकलोक जैसी कोई अवधारणा नहीं है और न ही पाप-पुण्य का कोई स्थान है। अनुष्ठानादि सम्पन्न करने के लिए पाहन की उपस्थिति अनिवार्य है, इसके अतिरिक्त समाज में उनका हस्तक्षेप नहीं है। वह अन्य आदिवासी सदस्य की तरह समाज में रहता है। धर्म का लचीला स्वरूप आदिवासी समाज में देखने को मिलता है। कुल मिलाकर आदिवासी धर्म सर्वथा प्राकृतिक धर्म है।

ii) धर्म का समाज में हस्तक्षेप

धर्म और समाज एक दूसरे से संबंधित होते हैं। मुख्यधारा के समाज को देखें तो धर्म और समाज एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, घुले-मिले हुए हैं। समाज की परिकल्पना हम धर्म के बिना नहीं कर सकते हैं। समाज का प्रारम्भ ही होता है धर्म से। धर्म के बिना किसी समाज के संबंध में हम विचार ही नहीं कर सकते हैं। अंबेडकर ने भी हिन्दू धर्म को ठुकराकर बौद्ध धर्म को अपनाया था और यह बताया कि भारतीय समाज की कल्पना धर्म के बिना नहीं की जा सकती है। लेकिन आदिवासी समाज में धर्म का हस्तक्षेप उस तरह से नहीं है।

आदिवासी समाज धर्म द्वारा संचालित नहीं होता है। इसलिए एक तरह से हम कह सकते हैं कि इनका कोई धर्मग्रंथ नहीं है। अभी तक उनका बड़ा पूजा स्थल नहीं है या कोई बड़ा ईश्वर नहीं है। कोई भी इंसान ईश्वर का दर्जा हासिल नहीं करता है। जिस प्रकार राम मनुष्य रूप में थे, लेकिन उसको ईश्वर का स्थान दे दिया गया। अर्थात् उन्हें एक अवतार के रूप में देखा गया जिसने धर्म की स्थापना और लोक कल्याण के लिए अवतार लिया था। इस संदर्भ में डॉ. विनायक तुमराम का कथन द्रष्टव्य है - “आदिवासी लोग ईश्वर या भगवान के अवतार को नहीं मानते। ‘अवतारवाद’ की संकल्पना ही उनकी धर्म-व्यवस्था में नहीं है। किसी ईश्वर ने अवतार धारण कर विश्व-कल्याण या लोकोद्धार किया, इस पर उनका विश्वास नहीं है।”¹⁵ आदिवासी समाज में इस तरह की परिकल्पना नहीं है। किसी को मनुष्य की ही तरह माना गया है, उसे कोई ईश्वर का स्थान नहीं दिया गया है, भगवान नाम से इनके समाज में कोई व्यक्ति नहीं है। व्यक्ति को व्यक्ति की तरह ही मान लिया गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया गया है, लेकिन उस सत्ता को निरंकुश सत्ता की तरह नहीं स्वीकारा है।

आदिवासियों के कई धार्मिक अनुष्ठान होते हैं और उन्हें पूर्ण हृदय से आनंदपूर्वक मनाते हैं। ये अनुष्ठान उनके जीवन मूल्यों और एकता के रूप में उनके बीच वास करते हैं, उन पर

नियंत्रण या हस्तक्षेप नहीं करते हैं। जो भी प्रथाएँ होती हैं उनके पीछे ये 'क्यों', 'कैसे' का तर्क नहीं रखते हैं। अपने पुरखों पर विश्वास करते हुए पुरखों द्वारा सिखाए गए मार्ग पर चलते हैं। डॉ. विनायक तुमराम का कहना है - "किसी प्रथा-परम्परा, श्रद्धा, विश्वास या मान्यता के पीछे कारण क्या है, यह जानने का या पूछने का स्वभाव आदिवासियों का नहीं है। अपने पूर्वजों के बताए हुए मार्ग पर चलना और उनके संकेतों का पालन करना वे अपना परम कर्तव्य ही नहीं अपितु सामाजिक दायित्व मानते हैं। क्यों और कैसे यह विज्ञान दृष्टि उनमें अभी विकसित नहीं हुई है।"¹⁶ धर्म तो निःस्वार्थ होता है, पवित्र होता है। वर्तमान संदर्भ में देखा जाए तो धर्म व्यवसाय का माध्यम बन गया है जहाँ आडंबरप्रियता का महत्वपूर्ण स्थान होता है। किन्तु आदिवासी समाज में ऐसा नहीं है। इनके समाज में धर्म का जटिल और संकुचित रूप नहीं मिलता है, बल्कि इसमें लचीलापन और सहजता विद्यमान है जिसमें शासन की चाह नहीं और जो सहजता से जल तथा वायु की भांति बहता रहता है। धर्म पवित्र होता है। पवित्र उसे कहा जाता है जो निःस्वार्थ हो। धर्म समस्त अहंकार से, बुरे विचारों से रक्षा करता है। प्रसिद्ध लेखक हरिराम मीणा आदिवासी धर्म की सहजता पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं - "उनके धर्मस्थल व्यावसायिक केंद्र नहीं बनते। जैसा वे खाते हैं, पीते हैं वैसा ही चढ़ावा देव-देवी के सामने अर्पित किया जाता है। दिखावटीपन कहीं नहीं होता। ऐसा सहज धर्म उनकी संस्कृति को समृद्ध बनाता है। न धर्म उन पर हावी होता है और न वे धर्म के ठेकेदार बनते हैं। यही खास वजह है कि आदिवासी धर्म सांप्रदायिकता का जहर नहीं फैलाता।"¹⁷

आदिवासी समाज में कई समुदाय हैं और सभी की अपनी श्रद्धा और निष्ठा है। उनके धर्म का आधार प्रकृति है। आदिवासी धर्म अत्यंत सरल है जिसके अंतर्गत कोई भी स्वेच्छा से जीवनयापन कर सकता है। धर्म को मानना है तो माने अथवा न माने, अन्य धर्म की भांति बंधन में बंधकर रहना आदिवासी समुदाय के लिए आवश्यक नहीं है। आदिवासी समुदाय प्रकृति पूजक हैं। प्रकृति से सहजता एवं सरलता सीखा जिसकी झलक उनके धर्म में परिलक्षित होता है। इनका सुसंगठित धर्मपीठ नहीं है और न ही पुरोहितों का प्रत्यक्ष नियंत्रण है। सहज होने के

कारण धर्म का जटिल स्वरूप देखने को नहीं मिलता है। आदिवासी समुदाय के अंतर्गत पाहन के रूप में पुरोहित होते हैं, किन्तु उनकी भूमिका अनुष्ठानादि सम्पन्न करने तक ही सीमित है। ध्यातव्य है कि पाहन धर्म का प्रभु नहीं बन बैठता है, वह पूजा सम्पन्न होने के पश्चात् सामान्य आदिवासी व्यक्ति की तरह जीवन व्यतीत करता है। यही कारण है कि उनकी सामुदायिक पहचान, उनके जीवन मूल्य नष्ट नहीं हुए क्योंकि धर्म उनके समाज का एक हिस्सा है, नियंता नहीं जिसका नियंत्रण सर्वत्र हावी हो। वर्चस्ववादी प्रवृत्ति ने उनकी भूमिका परिवर्तित कर दी है और आदिवासी धर्म विकृत होता जा रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म का हस्तक्षेप आदिवासी समाज में उस रूप में नहीं है जिस रूप में आदिवासी इतर समाज में व्याप्त है।

आदिवासी धर्म विशुद्ध प्राकृतिक धर्म है जहाँ धर्म की अवधारणा अन्य समाज की तुलना में अत्यंत भिन्न है। आदिवासी प्रकृति के समस्त अवयवों की पूजा करते हैं और उनके प्रति श्रद्धा रखते हुए मानवीय धर्म का पालन करते हैं। उदाहरण के लिए जिस वृक्ष की पूजा की जाती है, आवश्यक नहीं कि देवता के रूप में केवल उसी वृक्ष की पूजा की जाए। संसार में उपस्थित प्रत्येक वृक्ष प्रकृति का ही स्वरूप है, अतः प्रत्येक वृक्ष आदिवासियों के लिए पूजनीय है। मंदिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा जैसी धार्मिक संस्थाएँ आदिवासी समाज में नहीं पाई जाती हैं। आदिवासी धर्म नैसर्गिकता से ओतप्रोत है जो पवित्र ग्रन्थों के उपदेशों एवं कर्मकांडों पर निर्भर नहीं है। इन धार्मिक ग्रन्थों के माध्यम से धर्म का सीधा प्रभाव धर्मावलम्बियों पर रहता है जो उन्हें धर्म के बंधन में बाँधकर रखने का कार्य करता है। धर्मानुगामियों की एक सीमा होती है जिसके घेरे में रहकर धर्म का अभ्यास करते हैं। विभिन्न नियमों और वर्जनाओं सहित धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती है। धार्मिक ग्रन्थों के बारे में कहा गया है - “वे विश्वासों, पौराणिक कथाओं, अनुष्ठान प्रथाओं, आज्ञाओं या कानूनों, नैतिक आचरण, आध्यात्मिक आकांक्षाओं और एक धार्मिक समुदाय को बनाने या बढ़ावा देने के संकलन या चर्चा के द्वारा साहित्यिक ग्रन्थों से भिन्न होते हैं।”¹⁸ उपरोक्त कथन में ध्यान देने वाली बात यह है कि

जीवन का संचालन धर्म के माध्यम से होता है। विश्वास, अनुष्ठान, नियम, आचार-विचार आदि समस्त मानवीय क्रियाकलापों की डोर धर्म के हाथ में है। वंदना टेटे ने शास्त्र के संबंध में कहा है - “प्राथमिक स्तर से उच्च स्तर के पठन-पाठन सामग्रियां तथा भारत की समूची अध्ययन प्रणाली और परंपरा शास्त्रों पर आधारित है। दरअसल, शास्त्र रचे ही जाते हैं व्यवस्था की राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए। विचारधाराओं के सुनियोजित व व्यवस्थित प्रचार-प्रसार के लिए।”¹⁹ सदियों से गैर आदिवासी समाज इन्हीं शास्त्रों द्वारा नियंत्रित होता चला आ रहा है जिन्हें वे पूजते हैं। आदिवासी समाज किसी पर न तो शासन करता है और न ही वे शासित होते हैं। इसलिए धार्मिक ग्रन्थों अथवा शास्त्रों का कोई स्थान नहीं है। यहाँ बंधन के स्थान पर स्वतन्त्रता है जो प्राकृतिक है। व्यक्ति बिना किसी आडंबर और दिखावे के धर्म का पालन कर सकता है। बंधन नहीं, वर्जना नहीं तो हस्तक्षेप भी समाज में नहीं है। मनुष्य प्रकृति का ही एक अंग है, वह अपनी इच्छानुसार किसी भी मान्यता को ग्रहण करने के लिए स्वतंत्र है। यह आदिवासी धर्म की खासियत है जिसे डॉ. रामदयाल मुंडा ने ‘आदिधरम’ कहा है।

झारखंड में मूलतः सरना धर्म का अनुसरण किया जाता है। सरना धर्म में प्रवेश के लिए धर्म परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती है और न ही धर्म से संबंधित किसी प्रकार की गतिविधियों में सम्मिलित रहकर सरना धर्म का पालन किया जाता है। इसके लिए कोई किसी से प्रश्न नहीं करता है और न ही आक्षेप लगाता है। अर्थात् यहाँ आडंबर का कोई स्थान नहीं है। इसीलिए “इसे प्राकृतिक धर्म भी कहा गया है। प्राकृतिक अर्थात् जो जैसा है वैसा ही स्वीकार्य है।”²⁰ पूर्णतः समानता पर आधारित समाज होने के कारण आदिधरम में भेदभाव नहीं किया जाता है। आदिवासियों का प्रकृति से सर्वप्रथम और प्रत्यक्ष साक्षात्कार हुआ तथा प्रकृति को नजदीक से समझा, जाना तथा प्रकृति के आधार पर अपना दृष्टिकोण निर्मित किया। धार्मिक मान्यताएँ प्रकृति के आधार पर निर्मित किए जो सर्वथा अन्य धर्मों से भिन्न हैं। भिन्नता होने के कारण अन्य धर्मों के प्रति द्वेष भाव नहीं है, इंसानियत सर्वश्रेष्ठ है। यह किसी को धर्म के नाम पर गुलाम बनाने की प्रक्रिया को नकारता है जो अन्य धर्म में प्रचलित है। ‘काला पादरी’

उपन्यास में जेम्स खाखा का यह कथन विचारणीय है - “मां कहती है कि चूंकि चर्च ने तुम्हारे पिता और दादा को रोटी दी थी, काम दिया था और राजा की बेगार से मुक्ति दिलवायी थी, इसलिए तुम्हें अपना पूरा जीवन चर्च की सेवा में बिताना है। क्या यह एक तरह का बंधुआ विचार नहीं है,”²¹ इसके विपरीत आदिवासी धर्म में ईश्वर की प्राप्ति इसका मुख्य लक्ष्य नहीं है, पूरे समुदाय के हित को ध्यान में रखते हुए मानवता की स्थापना इसका मुख्य उद्देश्य है। पुरखों द्वारा बनाई गई मान्यताओं पर वे कभी प्रश्नचिन्ह नहीं उठाते हैं, वे पूर्ण विश्वास एवं आस्था रखते हुए उनके द्वारा बताए गए रास्तों का अनुसरण करते हैं। अन्य धर्मों में किसी व्यक्ति विशेष के नाम पर संप्रदाय आगे बढ़ता है और वह व्यक्ति विशेष संस्थापक कहलाता है। आदिवासी समाज में पूर्वज समुदाय के लिए मार्ग बताते हैं, किन्तु वे संस्थापक नहीं होते हैं। वाचिक रूप में उनके नियम एवं मान्यताएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आती हैं जो सभी के लिए खुला है। ये मान्यताएँ सरल एवं छल-कपट रहित हैं जिससे प्रकृति को किसी प्रकार की हानि अथवा क्षति न पहुंचे, इस बात का वे हमेशा ख्याल रखते हैं।

आदिवासी समुदाय में स्वर्ग-नरक लोक जैसी काल्पनिक धारणाएँ विद्यमान नहीं रही हैं। गैर आदिवासी समुदायों की मान्यता के अनुसार मृत्यु के पश्चात् कर्म के अनुसार स्वर्ग अथवा नरक लोक की प्राप्ति होती है। आदिवासी समाज मृत्यु को शाश्वत सत्य मानता है। मृत्यु के बाद आत्मा चौरासी योनियों से होकर वापस मनुष्य के रूप में जन्म लेती है, ऐसी धारणा आदिवासी समाज में नहीं है। मृत्यु के बाद शरीर को दफनाने अथवा जलाने का विधान है। मनुष्य का शरीर पंचतत्त्वों में विलीन हो जाता है। वे इसी प्रकृति जगत को सत्य मानते हैं। जो जीवन उन्हें इस संसार में मिला है उसी को वे यथार्थ मानते हैं और उसी को जीते हैं। इनकी धारणा है कि मर कर भी व्यक्ति अपने परिवार के साथ वैसे ही रहता है जैसे अपने जीवन काल के दौर में रहता था। ये पुरखा कहलाते हैं जिनका वे सदैव स्मरण करते हैं।

अन्य समाज में पूजा-कर्म में मध्यस्थता की आवश्यकता होती है जैसे पंडित, पुरोहित, मौलवी आदि। आदिवासी धर्म का समाज में हस्तक्षेप नहीं है तो धार्मिक लोगों का भी हस्तक्षेप नहीं है। जो भी धार्मिक अनुष्ठान होते हैं वह स्वच्छंद रूप से होते हैं। सारे लोग इस अनुष्ठान में भाग लेते हैं, समान रूप से हिस्सा लेते हैं और इस तरह से वे अपने ईश्वर से संपर्क स्थापित कर सकते हैं। ईश्वर से संपर्क स्थापित करने के लिए मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं होती है। कोई भी धर्म हो - हिन्दू, जैन, मुसलमान आदि धर्मों में मध्यस्थ व्यक्ति होता है जिसका समाज में खूब सम्मान है और हस्तक्षेप भी है जो आदिवासी समाज में नहीं है। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि विभाजन रहित समाज होने के कारण बोंगाओं में भी किसी प्रकार का विभाजन नहीं है। उनके बोंगा पुरुष और स्त्री दोनों रूपों में हो सकते हैं। वंदना टेटे ने खड़िया आदिवासी समुदाय के धार्मिक विश्वासों का उदाहरण देते हुए कहा है - “हम सृष्टि की सर्वोच्च सत्ता को ‘पोनोमसोर’ कहते हैं। मुंडा और हो लोग जिसे ‘सिंगबोंगा’ कहते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी के अध्येताओं ने पोनोमसोर और सिंगबोंगा को सूर्यदेव बना दिया है। सूर्य देवता। जो हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के अनुसार पुरुष देव है। जबकि पोनोमसोर और सिंगबोंगा दोनों ही आदिवासी धार्मिक विश्वास के अनुसार लिंगविहीन हैं। वे न स्त्री हैं और न ही पुरुष।”²² वे प्रकृति में अपनी सच्ची श्रद्धा रखते हैं, इसलिए भगवान को मनुष्य रूप में अवतार लेने वाली धारणा को नहीं मानते हैं। प्रकृति के प्रत्येक अवयवों के प्रति श्रद्धा रखने की प्रवृत्ति आदिवासी समाज में विद्यमान रही है। अतः ईश्वर के अवतार ग्रहण करने वाला कॉन्सेप्ट आदिवासी धर्म में नहीं है। ईश्वर का धरती पर अवतरण मानव कल्याण के लिए हुआ है, इस पर वे विश्वास नहीं करते हैं। जब ईश्वर ही नहीं है तो अवतारवाद जैसी संकल्पना का कोई अस्तित्व नहीं है।

सारतः आदिवासी धर्म को धर्म की प्रचलित अवधारणा के संदर्भ में रखकर नहीं देखा जा सकता है। अन्य धर्म की भांति आदिवासियों की भी अपनी आस्थाएँ हैं, विश्वास है, किन्तु यह आस्था एवं विश्वास सत्य पर आधारित है। धार्मिक गतिविधियों एवं अनुष्ठानादि का समाज में हस्तक्षेप नहीं होता है और न ही धर्म के पुरोधा का हस्तक्षेप होता है। व्यक्ति सीधे ईश्वर

से जुड़ सकता है, उसे किसी मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं होती है। यहाँ न कोई राजा है और न ही प्रजा। सभी प्राणी प्रकृति की संतान है और सभी को समान रूप से जीने का पूरा अधिकार है। धर्म का डॉमिनेंट स्वरूप विद्यमान नहीं है और न ही समाज को डॉमिनेंट करने की प्रवृत्ति आदिवासी धर्म में रही है। अतः आदिवासी धर्म का समाज में हस्तक्षेप भी नहीं है। समाज स्वच्छंद रूप से अपने अनुसार धर्म का पालन कर सकता है।

iii) धर्मांतरण: कारण और प्रभाव

धर्म का अर्थ है धारण करना। जिसे धारण किया जा सके, जिसे व्यवहार में लाया जा सके वह धर्म है। चूँकि हम मानव हैं तो मूल और पहला धर्म होता है मानव धर्म। धर्म के अंतर्गत धर्मांतरण की बात आती है तो एक धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को अपनाना अथवा अन्य धर्म में परिवर्तित होना धर्मांतरण कहलाता है। धर्मांतरण को दो रूपों में देख सकते हैं - 1) स्वेच्छा से किया गया धर्मांतरण तथा 2) बलपूर्वक किया गया धर्मांतरण। स्वेच्छा से किए गए धर्मांतरण के अंतर्गत मनुष्य की स्वयं की इच्छा महत्वपूर्ण होती है। यदि वह स्वयं की इच्छा के अनुरूप धर्म परिवर्तित करता है तो वह स्वेच्छा से किया गया धर्मांतरण है। इसमें कोई गलत बात नहीं है कि किसी व्यक्ति को अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्म में कोई विशेषता अथवा कोई अच्छी बात दृष्टिगोचर हुई हो और वह उस धर्म को अपनाने की इच्छा रखता है तो वह स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र है। किन्तु जहाँ मनुष्य की इच्छा के प्रतिकूल जबरन धर्म में परिवर्तन किया जाए तो वहाँ बलपूर्वक धर्मांतरण होता है जो मानव दृष्टि में गलत कार्य है। इस तथ्य को आदिवासी जीवन के संदर्भ में देखा जा सकता है।

जब ईसाई मिशनरी भारत आए तो उस समय आदिवासियों के पास न शिक्षा थी और न ही आर्थिक अवस्था उतनी ठीक थी, हालांकि उत्तर भारत में ईसाई मिशनरी बाद में आए, दक्षिण भारत में ईसाई मिशनरी पहले आए। अंग्रेजों के आने के पूर्व देश की आबादी बढ़ चुकी थी और आदिवासी समाज का गैर आदिवासी समाज से संपर्क बढ़ने लगा था। हिंदुओं के अंधविश्वास और आडंबर से आदिवासी समाज प्रभावित होने लगा और उस आडंबर से मुक्ति के लिए स्वेच्छा से ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। 'माटी माटी अरकाटी' उपन्यास में लेखक अश्विनी कुमार पंकज ने धर्मांतरण की समस्या को दिखाने का प्रयास किया है कि पादरी ईसाई धर्म में परिवर्तन कराने का एक भी अवसर नहीं गँवाना चाहते थे - "फोगला और उसकी पत्नी

मारिना, दोनों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। उन दोनों का रविवार के दिन पादरी कोनवे की उपस्थिति में सूलेक के नए और भव्य चर्च में बपतिस्मा हुआ। फादर कोनवे और फोगला ने कोंता और ओंजा को भी बहुत तरह से 'आग्रह' किया था, पर वे दोनों ईसाई बनने के लिए तैयार नहीं हुए थे।...फादर कोनवे प्रेयर के पहले या बाद में मौका मिलते ही उन्हें प्रभु ईसा मसीह की महिमा सुनाने लगता। उन्हें लगता था कि ये लोग चर्च आते हैं तो जल्दी ही ईसाई भी बन जाएंगे।”²³ इस उपन्यास में कुली के रूप में लिये जा रहे असंख्य आदिवासी स्त्री-पुरुष ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। इसके पीछे का मुख्य कारण अंग्रेजों का शोषण था जिसके दबाव में आकर उन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। ईसाई धर्म में आने के पश्चात् उन्हें बहुत सम्मान और आदर मिला, ऐसी बात नहीं थी। अंग्रेजों की दृष्टि में वे असभ्य, जंगली, बर्बर पशु हैं, मनुष्य नहीं।

आदिवासियों के धर्मांतरण का पहला और प्रमुख कारण है बाहरी आक्रमण। भारत में अक्षय तथा अमूल्य संपदाएँ प्राप्त होती हैं। ये संपदाएँ प्राकृतिक हैं जिस पर बाहरी लोगों की दृष्टि लगी हुई थी और ये सारी संपदाएँ आदिवासी क्षेत्रों में प्राप्य थी। आदिवासी प्रकृति के एक-एक मूल्यवान वस्तुओं से परिचित थे जिसे सँजोकर रखने का दायित्व उन्हीं पर था। यही कारण है कि आदिवासी बाहरी आक्रमण के शिकार बने। सबसे पहले मुगल भारत आए और सम्पदा से भरपूर जंगल पर आक्रमण कर अपना डेरा जमाया क्योंकि वहाँ सोने और हीरे जैसे मूल्यवान रत्न पाये जाते थे। मुगलों ने धीरे-धीरे अपना राज्य विस्तृत किया। कहा जाता है कि आदिवासी समुदाय का राजा दुर्जन शाल मुगलों के हाथ लग गया और उसे दिल्ली ले जाया गया। दुर्जन शाल पाँच-छः साल बाद वापस लौटा तो सही, किन्तु उसके साथ कई राजा भी आए। स्वाभाविक है कि राजाओं की टोली आएगी तो उनके साथ उनकी रीति, परंपरा, रिवाज भी साथ आएंगे। अब आदिवासी समुदाय का राजा बाहरी लोगों की संस्कृति के अनुसार कार्य करने लगा। कई राजाओं को जमींदार बनाकर जमींदारी प्रथा की शुरुआत की तथा आदिवासियों की जमीनें अधिगृहीत कर जमींदार बन बैठे। जमींदारी सौंपने का उद्देश्य था कि राजपूत-

भूमिहार आपस में ही लड़ते रहें और हिन्दू रीति के अनुसार धार्मिक कार्य सम्पन्न होते रहे। जैसे-जैसे ये सुदृढ़ होते गए, वैसे-वैसे उनके अत्याचार भी बढ़ते गए। स्त्रियाँ इनके शोषण की सबसे ज्यादा शिकार बनीं। जंगलों पर आदिवासियों के अधिकार समाप्त हो गए। अंग्रेजी व्यवस्था लागू होने के बाद वन कानून बना जिसके तहत कोई भी बगैर अनुमति के पत्ता भी नहीं तोड़ सकता था। यदि कोई व्यक्ति वन सम्पदा ले जाते हुए पकड़ा जाता तो उसे अपराधी घोषित कर जेल भेज दिया जाता था। यदि कोई स्त्री पकड़ी जाती तो परिस्थिति का लाभ उठाकर बलात्कार किया जाता था जो किसी भी समाज के लिए असहनीय था।

जंगल आदिवासियों का निवास स्थान रहा है जहाँ कोई प्रवेश नहीं कर सकता था, किन्तु अपने लोगों के छल के कारण जंगल जैसा अभेद्य स्थान भेद्य बन गया। जब अंग्रेज भारत आए तब उनका अनुसरण करते हुए ईसाई मिशनरियों ने भी भारत में प्रवेश किया और अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए आदिवासी समाज को मुख्य रूप से चुना। उनके धर्म के प्रति उदासीनता व्यक्त करते हुए अपने धर्म, संस्कृति, भाषा को श्रेष्ठ बताया और उन पर शासन करना प्रारम्भ किया। इस संदर्भ में डॉ. वीर भारत तलवार का कथन द्रष्टव्य है - “वास्तव में हर विजेता जाति यह साबित करने की कोशिश करती है कि उसकी संस्कृति, भाषा-साहित्य, धर्म तथा मूल्य अधिक श्रेष्ठ हैं तथा उस जाति की, जिसे विजेता जाति ने गुलाम बना लिया है, संस्कृति, भाषा-साहित्य, धर्म और मूल्य घटिया हैं, पिछड़े हैं, बर्बर और निम्न कोटि के हैं। हर विजेता जाति ने विजित जाति को बर्बर कहा है, असभ्य कहा है, राक्षस कहा है।”²⁴ लेखक तेजिंदर ने ‘काला पादरी’ उपन्यास में इसी तथ्य को उभारने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में कथा तबकी है जब ईसाई मिशनरी 1932 में भारत आई थी। उन्होंने आदिवासियों की स्थिति का आकलन कर उन्हें धार्मिक रूप से पंगु बनाने की चेष्टा की। उनकी दृष्टि में आदिवासी जंगली, असभ्य, बर्बर थे जिन्हें अपने धर्म में अंतरण उनकी अपनी पहचान, अपना अस्तित्व छीनकर सभ्य बनाने की चेष्टा की गई। उक्त उपन्यास में फादर कहते हैं - “अभी जहाँ हम बैठे हैं यहाँ तो रात रात भर आग जलाकर बैठना पड़ता था। कुनकुरी तो ठीक था, लेकिन यहाँ

गिन्ना बहार में उन्नीस सौ बत्तीस में कुल जमा आठ घर थे, ओनली एट, वे भी एक दूसरे से दूर दूर थे। जेम्स के ग्रांडफादर भी यहीं पर थे, यंग स्टाउट ट्राइब, इसका दादा नंगा रहता था, राजा के यहाँ बांडेड था, जीभ जैसे था ही नहीं मुंह में, कुछ बोलता ही नहीं था, हमने उसका बपतिस्मा किया, जेम्स का बाप उस समय छोटा था, उसका नाम था 'एलेक्जेंडर',²⁵ यद्यपि ईसाई मिशनरियों ने इन्हें रोटी, कपड़े दिये, किन्तु इस उपकार के पीछे उनकी मंशा कुछ और थी। वे अपने धर्म के विचारों को आदिवासियों के भीतर उपजाना चाहते थे और अपने प्रभु की छवि को उनके अन्तर्मन में स्थापित करना चाहते थे। फादर के शब्दों में - "इनके पास ईश्वर का कोई इमेज नहीं था डियर, जिसकी ओर ये आस भरी निगाह के साथ देख सकें, जब हम यहाँ आया तो राजा भी अपना देवी को प्लांट कर रहा था। यू नो हाऊ टू प्लांट ए थाट, इट इज़ वैरी इम्पार्टेन्ट, हमने भी प्रभु यीशु की इमेज प्लांट कर दी, इट वाज़ ए वार ऑफ इमेजेज़, जिसमें जीत हमारी हुई।"²⁶ सोची-समझी साजिश को प्रभु की इच्छा का नाम देकर एक प्रकार से मानसिक दबाव डाला गया और आदिवासियों को धर्मांतरित किया। उन्होंने केवल प्रभु की इच्छा के नाम पर उनकी आस्था, कृतज्ञता, सहजता, सामूहिकता, सहभागिता - सभी को परिवर्तित कर दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासी धर्मांतरित तो हुए, लेकिन अपनी पहचान खोकर तथा एक नई पहचान को आत्मसात कर उन्हें बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा।

कहते हैं कि बाहर की दुनिया बड़ी लुभावनी होती है। दूर से सुंदर और मनमोहक प्रतीत होती है तथा हम अनायास ही उस ओर आकर्षित हो जाते हैं। हिन्दी में कहावत प्रचलित है 'दूर का ढोल सुहावना होता है', किन्तु पास आकर देखने पर उसकी वास्तविकता का भान होता है। आदिवासी समाज शहर की चकाचौंध रोशनी से दूर, समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं से तब तक अपरिचित था जब गाँव में शहरीकरण का प्रवेश नहीं हुआ था। शहरीकरण के पश्चात् आदिवासी समाज में अर्थ का प्रवेश हुआ। अर्थ प्रत्येक समुदाय के विकास में महत्वपूर्ण कारक के रूप में माना जाता है। किन्तु जब अर्थव्यवस्था में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है तो आर्थिक समस्या उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप गरीबी, बेरोजगारी आदि समस्याएँ घर कर जाती

है। धर्मांतरण के संदर्भ में अर्थ प्रलोभन एक महत्वपूर्ण कारक है। जब ईसाई मिशनरी भारत आई थी तो उन्होंने स्थिति के अनुसार आदिवासी को अर्थ का प्रलोभन दिया। आदिवासी इससे पहले धन अथवा अर्थ (मुद्रा) से परिचित नहीं थे। मुद्रा द्वारा क्रय-विक्रय का चलन आदिवासी समाज में विद्यमान नहीं था। किन्तु बाहरी लोगों के प्रवेश ने मुद्रा प्रचलन करवाया और अर्थ से परिचित करवाया। फलस्वरूप आदिवासियों को धन का प्रलोभन दिया जाने लगा। धन के मायने वे समझ चुके थे। अतः धन के मोहवश ईसाई मिशनरियों ने उनका धर्म परिवर्तन किया। विदेशी सरकार विपुल मात्रा में मिशनरियों को धन उपलब्ध करा रही थी। यद्यपि मिशनरियों ने आदिवासियों को बंधुआ मजदूरी से मुक्त करवाया, उनके लिए चिकित्सा का प्रबंध किया, अंग्रेजी भाषा का प्रचार-प्रसार करने के लिए विद्यालय की सुविधा उपलब्ध की ताकि आदिवासी अपने पहचान से विलग हो जाए।

प्रत्येक धर्म का अपना नैतिक मूल्य होता है, उनकी अपनी-अपनी आस्थाएँ होती हैं। कोई भी धर्म उच्च या निम्न नहीं होता है। सभी धर्मों में अच्छी बातें अवश्य होती हैं, यदि उसका सही तरीके से पालन किया जाये तो वह सामाजिक हित का माध्यम बन जाता है। आदिवासी समाज एक ऐसा समाज है जो स्वयं के बारे में न सोचकर सर्वहित के बारे में सोचता है। यही कारण है कि उनके हृदय में सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना विद्यमान है। आदर-सम्मान की भावना का अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे अन्य धर्म के प्रति आकृष्ट हो रहे हैं। किन्तु मुख्यधारा के समाज ने इसे गलत दृष्टि से देखा। उनकी दृष्टि में आदिवासी समाज एक असभ्य समाज रहा है जिसे सभ्य करने का बीड़ा उन्होंने उठाया है। परिणामस्वरूप अपने-अपने धर्मों में आदिवासियों को अंतरित करने का प्रयास किया गया। उनके क्षेत्रों में एक साथ रहकर उनके विशेषज्ञ बनें, उनके कर्ता-धर्ता बने। आदिवासियों से बहुत कुछ सीखा, किन्तु उनका कहीं भी नामोल्लेख नहीं है। श्री महादेव टोप्पो के कथनानुसार - “सभ्य समाज का आदमी हमारे साथ कुछ दिन रहता है और आदिवासी विशेषज्ञ कहलाता, हमारी ज्ञान और परम्पराओं का व्याख्याता बन जाता है।...आदिवासियों से प्राप्त ज्ञान उनका माना जाता है। उसी तरह जैसे

डिस्कवरी या नेशनल जियोग्राफी चैनल में 'मैन वर्सेज वाइल्ड', 'स्नेक रेंगलर' आदि कार्यक्रम कई बार आदिवासी-ज्ञान परंपरा और तकनीक से प्रेरित हैं। यह ज्ञान गोरा आदमी, आदिवासियों से सीखता है लेकिन उन्हें चैनलों में ऐसा दिखाया जाता है मानो मूलतः इस काम को उसी ने शुरू किया हो।²⁷ कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासी समाज अन्य समुदायों से भिन्न होते हुए भी किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रखते हैं। परस्पर सहभागिता और सहअस्तित्व की भावना रखते हुए सर्वथा उदारवादी दृष्टिकोण का समर्थन किया है। इस संदर्भ में बास्ता सोरेन का कथन द्रष्टव्य है - "झारखंड के हजारों वर्षों के इतिहास में आदिवासी जनता न सिर्फ हिंदुओं के प्रति बल्कि अन्य धर्म मानने वालों के प्रति भी सद्भावना रखते हुए शांति से जीती रही है। किसी भी धर्म के प्रति सद्भावना रखना, उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित करना, उसके आचार-अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने में सहयोग करना, अपराध नहीं है। इसका अर्थ कतई नहीं है कि उन्होंने अपना धर्म-विश्वास त्याग दिया है एवं अन्य धर्म को अपना लिया है। अपने धर्म-विश्वास एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को अटूट रखते हुए आदिवासियों ने हिन्दू धर्म के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया है एवं उसमें सहयोग भी दिया है।"²⁸ अर्थात् आदिवासी समुदाय अन्य धर्म के उत्सवों में भाग लेते हैं, उसमें सम्मिलित होते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि अपने धर्म को छोड़कर अन्य धर्म की ओर उनका झुकाव बढ़ रहा है। यह एक प्रकार का पूर्वाग्रह है जिसने धर्मांतरण की प्रक्रिया को तीव्र किया है।

धर्मपीठ का अर्थ है धार्मिक कार्यों का प्रमुख स्थल। प्रायः प्रत्येक धर्म का अपना धर्मपीठ विद्यमान है जो प्रकृति प्रदत्त नहीं वरन् इसका गठन किया गया है। इन धार्मिक स्थलों में उनके देवी-देवता मूर्त रूप में विराजमान रहते हैं जहाँ पूजा-अर्चना तथा अन्य धार्मिक नियमों का पालन किया जाता है। वर्तमान संदर्भ में एक धर्म से ईर्ष्या करना अथवा प्रतिस्पर्धा की होड़ ने धर्मांतरण की प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान की है। मंदिर, मस्जिद, चर्च आदि के रूप में धर्मपीठ एवं प्रचारक हैं जिनका उद्देश्य अपने धर्म और राज्य का विस्तार करना है। इससे भिन्न जब हम आदिवासी समाज की बात करें तो यहाँ धर्म का ऐसा जटिल और प्रतिस्पर्धात्मक

रूप विद्यमान ही नहीं है जिसका लाभ विभिन्न धर्मों ने उठाया है। धर्म आदमी का व्यवहार होना चाहिए। आज यह व्यवहार में न होकर आडंबर का रूप धारण कर लिया है। इसके विपरीत आदिवासी किसी देवता को नहीं, बल्कि शक्ति को पूजते हैं जिसका कोई सुसंगठित धर्मपीठ नहीं होता है। धर्म किसी उद्देश्य को लेकर चलता है। उदाहरण के तौर पर ईसाई मिशनरी के मत को देख सकते हैं। वे जब भारत आए थे तो उन्होंने पहले स्थिति की जाँच-पड़ताल की, उस क्षेत्र विशेष की व्यवस्था का निरीक्षण किया। तत्पश्चात् उन्होंने 'सेवा' के नाम पर धीरे-धीरे धर्म-परिवर्तन करना शुरू किया। ईसाई मिशनरी बड़ी संख्या में भारत आते गये और उनके धर्म-परिवर्तन में तीव्रता आई। इसके पीछे उनकी एक ही मंशा थी अपने साम्राज्य का विस्तार करना। साम्राज्य जितना विस्तृत होगा, धार्मिक मान्यताएँ उतनी ही विस्तृत होगी। अतः धर्म के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के कारण मुख्यधारा समाज ने आदिवासियों का विपुल मात्रा में धर्मांतरण किया।

धर्मांतरण का सबसे प्रमुख प्रभाव आदिवासी संस्कृति पर पड़ा। आदिवासी संस्कृति अन्य संस्कृतियों से भिन्न रही है। स्वाभाविक है कि उनकी सामाजिक व्यवस्था और संरचना भी भिन्न रही है। किन्तु बाहरी संस्कृति के प्रभाव में आते ही उनकी संस्कृति प्रभावित हुई। आदिवासी जातिविहीन समाज था, किन्तु धर्मांतरण के कारण जातिवाद का प्रवेश हुआ। वर्णव्यवस्था ने आदिवासी संस्कृति को छिन्न-भिन्न बना दिया। पहला प्रभाव यह पड़ा कि उनकी एकता भंग हुई। दूसरा प्रभाव उनकी सामूहिकता पर पड़ा जो आदिवासियत का मुख्य स्तम्भ था। इस प्रकार न केवल उनकी सांस्कृतिक विशिष्टता नष्ट हुई, बल्कि उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। आदिवासी धर्मांतरण के पूर्व शोषित तो थे ही, पर अब वे गुलाम बन गए हैं। वर्णव्यवस्था पर आधारित समाज ने "उत्पादन की प्रक्रियाओं को संचालित करने के लिए उनके श्रम का शोषण तो किया, अपने धर्म और संस्कृति का प्रसार उन तक तो किया लेकिन उन्हें 'मनुष्य' का दर्जा नहीं दिया।"²⁹ तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति आदिवासी समुदाय में प्रवेश करने लगी। परिणामस्वरूप बाल विवाह, स्त्री-पुरुष में

असमानता, महिलाओं का घूँघट में रहना आदि कुरीतियाँ उत्पन्न हुई जिसका अस्तित्व आदिवासी समाज में नहीं था। उनके रीति-रिवाज समाप्त हुए और नृत्य-संगीत पर रोक लगा दी गई जो उनकी संस्कृति का मुख्य अंग रहा है। वन-कानून लागू होने से आदिवासियों के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे ऐसी परिस्थिति में भी प्रकृति के हित और संरक्षण की बात सोचते हैं। भूमि आदिवासी संस्कृति से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। भूमि केवल मात्र भूमि नहीं है, बल्कि आदिवासियों की अर्थ एवं सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुष्ठान का एक अंग है। इसी भूमि में उनके पूर्वज निवास करते हैं जो सदैव उनकी रक्षा करते आए हैं। धर्मांतरण ने उनकी इस सांस्कृतिक धरोहर से विलग किया। अब न जाहेरथान रहा और न ही कोई धार्मिक स्थल जो उनकी श्रद्धा का केंद्र था। उनकी निःस्वार्थ श्रद्धा पर कुठाराघात हुआ। सभी चीजें परिवर्तित हो गईं, यहाँ तक कि उनकी पहचान भी लुप्त हो गई।

धर्मांतरण कोई साधारण घटना नहीं थी। जिन्होंने अपने समाज के धर्म को छोड़कर अन्य समाज के धर्म को ग्रहण कर लिया, उनमें और जो आदिवासी धर्म में ही है - दोनों में विभाजन रेखा देखने को मिलती है। यह विभाजन लम्बे समय तक चलता है। विभाजन को हम इस रूप में देख सकते हैं कि जो ईसाई हैं और जो गैर ईसाई हैं - दोनों के बीच की दूरी बढ़ रही है जबकि दोनों का समाज एक ही है। इसका प्रमुख कारण है धर्म और धर्म का ही यह प्रभाव है जिसकी वजह से दोनों के मध्य दूरियाँ बढ़ी हैं। ईसाई धर्म के लोग ईसाई धर्म से ही आपस में मेलजोल बढ़ा रहे हैं, विवाह भी ईसाई धर्म के अंतर्गत ही हो रहा है, जबकि गैर ईसाई वाले लोग गैर ईसाई को ही पूछ रहे हैं। यह एक बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। दूसरा, ईसाई धर्म में प्रविष्ट करने वाले लोग बहुत सम्मान और आदरपूर्वक रह रहे हैं, ऐसा नहीं है। वे (आदिवासी) ईसाई मिशनरियों की दृष्टि में वही असभ्य, जंगली, बर्बर समुदाय हैं जिसे अपने धर्म में परिवर्तित करके सभ्य बनाने का झूठा आडम्बर रचा गया। उदाहरण के तौर पर मुंडा समाज को लें तो मुंडा समाज स्त्री-पुरुष के मध्य शारीरिक संबंध को गलत (पाप) नहीं मानते हैं। उनके लिए यह सामान्य है। एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक सी बात है, किन्तु

ईसाई धर्म की मान्यता इससे भिन्न है। ईसाई धर्म स्त्री-पुरुष को स्वेच्छा से तलाक की भी आज्ञा नहीं देता है जबकि आदिवासी समाज में यह स्वतंत्रता दी गई है कि स्त्री अथवा पुरुष स्वेच्छा से सम्बन्ध-विच्छेद कर सकते हैं। नये जीवन की शुरुआत करने का अधिकार समाज स्वयं देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्य धर्म में परिवर्तित होने के पश्चात् आदिवासी समुदाय अपनी मान्यताएँ, जीवन-मूल्य सब पीछे छोड़ते चले आ रहे हैं। इस प्रकार के विभाजन की रेखा केवल धर्म में ही नहीं, बल्कि आदिवासी साहित्य में भी देखा जा सकता है। विशेषतः संथाली साहित्य पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा है। अंग्रेजों की लिपि रोमन है। ईसाई मिशनरियों ने अपना विद्यालय खोला, उसमें संथाली लिखने की लिपि रोमन थी और इसके बाद देश आजाद हुआ। जयपाल सिंह मुंडा तथा अन्य नेताओं के आंदोलनों का प्रभाव पड़ रहा था जिससे सरकार की तरफ से कई संथाली पत्रिकाएँ निकलने लगी। ये सारी पत्रिकाएँ देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुईं और इसका 'रिकॉर्ड' देवनागरी लिपि में ही संरक्षित करके रखा गया। आगे चलकर ओलचिकी लिपि का आविष्कार हुआ जिसके आविष्कारक रघुनाथ मुर्मू थे। "संथाली एक विशेष भाषा है, और एक साहित्य है जिसकी शुरुआत 15वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई। उन्होंने महसूस किया कि उनके समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और परंपरा के साथ ही उनकी भाषा को बनाए रखने और बढ़ावा देने के लिए एक अलग लिपि की जरूरत है, और इसलिए उन्होंने संथाली लिखने के लिए ओलचिकी लिपि की खोज के काम को उठाया। 1925 में ओलचिकी लिपि का आविष्कार किया गया था।"³⁰ ओलचिकी लिपि का आविष्कार करने वाले गैर ईसाई व्यक्ति थे। अभी की स्थिति यह है कि रोमन और ओलचिकी ये दोनों धर्म के आधार पर विभाजित हो गया है। ओलचिकी अर्थात् गैर ईसाई और रोमन अर्थात् ईसाई। यह एक दुष्प्रभाव पड़ा।

धर्मांतरण का एक प्रभाव आदिवासी समाज और उनकी सामाजिक व्यवस्था पर पड़ा। उनके सामाजिक रीति-रिवाज समाप्त हुए तथा उनके स्थान पर नई धार्मिक प्रणाली ने स्थान ग्रहण किया जिसके नियम-कानून ने उन्हें पंगु बना दिया। उन्होंने स्वच्छंदता का आवरण उतारकर आडम्बरवादी धर्म का आवरण ओढ़ लिया है। वह चाहे कोई भी धर्म में क्यों न

परिवर्तित हो जाए, सभी धर्मों ने अपने तरीके से शोषण किया। इस संदर्भ में डॉ. वीरभारत तलवार का कथन द्रष्टव्य है - “हिन्दू, ईसाई, इस्लाम और बौद्ध सभी धर्मों के समाज में धर्म जनता का शोषण करने का एक हथियार बना हुआ है। पंडे-पुरोहित मुल्ला-मौलवी तथा पादरी - जो अक्सर स्वयं चरित्रहीन, लोभी, स्वार्थी तथा धनियों के तलवे सहलाने वाले होते हैं - धर्म के नाम पर मनुष्यों को घुटने टेकना, परिस्थिति के आगे झुकना तथा ईश्वर, सरकार और धनी लोगों की गुलामी करना सिखाते हैं।”³¹ उदाहरणतः हम ईसाई धर्म को ले सकते हैं। ईसाई धर्म में कई नियम हैं, उन नियमों में एक नियम यह भी है कि ईसा मसीह के अलावा किसी ईश्वर की आराधना करना अपराध है और इसी नियम को ईसाई लोग मानकर चलते हैं। यही कारण है कि वे गैर ईसाई समुदाय के लोगों द्वारा किए गए पूजा-पाठ एवं प्रसाद वितरण में भाग नहीं लेते। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि अन्य धर्म के प्रभाव के कारण वे स्वयं के धार्मिक कार्यों से वंचित रह जाते हैं जैसे पेड़-पूजा करना, अपने सरना स्थल पर जाना इत्यादि। इसे एक वृहद प्रभाव के रूप में देख सकते हैं। इस संदर्भ में ‘काला पादरी’ उपन्यास में वक्ता आदित्य का कथन द्रष्टव्य है - “दरअसल हमारे लोग यह नहीं समझ पा रहे हैं कि धर्म परिवर्तन आखिरकार होता क्यों है? हम खुद ही वह सम्मान आदिवासियों को और समाज के पिछड़े तबकों को नहीं दे पा रहे हैं जिसके कि वे हकदार हैं और जब कोई और उन्हें वह सम्मान दे कर अपने साथ जोड़ लेता है तो हमें उसमें एक तरह के षडयंत्र की बू आती है,”³² जेम्स खाखा के पूर्वज ईसाई धर्म में परिवर्तित हुए और अब जेम्स खाखा भी चर्च का पादरी बन चुका है। आदित्य एवं इस उपन्यास का वक्ता जब अपने मित्र जेम्स के घर जाता है तो कमरे की ओर ध्यान आकृष्ट होता है जहाँ ईसा मसीह की छवि दीवार पर टंगी हुई थी। आदिवासी समाज में देवी-देवता की इस तरह से कोई छवि निर्मित नहीं थी, लेकिन उनके धर्म को छवि विहीन भी नहीं कह सकते हैं। जेम्स खाखा फादर मैथ्यूज को सम्बोधित करते हुए कहता है - “क्या यह सच नहीं कि हमारी इमेजेज़ में पहाड़ थे, नदियां थीं, पेड़ थे, शेर थे, चीते थे, और राजा ने हमें बंधुआ बना दिया, फिजिकली और इकनॉमिकली एक्स्प्लायट किया, लेकिन आपने क्या किया? यू रादर

टेम्ड अस, आपने हमें पालतू बना दिया, हमारे लिये हिंदू फंडामेंटलिस्टों और आपमें अब कोई खास फर्क नहीं है। हमारी सारी इमेजेज़ छीन लीं आप लोगों ने...”³³

यद्यपि ईसाइयों ने उन्हें रोटी दी, बंधुआ मजदूरी से मुक्त करवाया, और अपने धर्म में परिवर्तित किया, किन्तु यह सब उन लोगों ने निःस्वार्थ भाव अथवा मानवता की हैसियत से नहीं किया, बल्कि अपने धर्म और साम्राज्य-विस्तार के लिए किया। उन्होंने आदिवासियों के लिए जो भी किया, उसका मूल्य उन्हें चुकाना ही था। इस मूल्य के अन्तर्गत उन्हें अपना पूरा जीवन ईसाई धर्म के प्रति समर्पित भाव से बिताना था। ‘काला पादरी’ उपन्यास में पात्र जेम्स खाखा ने बताया, “माँ कहती है कि चूंकि चर्च ने तुम्हारे पिता और दादा को रोटी दी थी, काम दिया था और राजा की बेगार से मुक्ति दिलवायी थी, इसलिए तुम्हें अपना पूरा जीवन चर्च की सेवा में बिताना है। क्या यह एक तरह का बंधुआ विचार नहीं है,”³⁴ जेम्स खाखा की यह बात सोचने पर विवश कर देती है कि एक बंधुआ मजदूरी से छूटे तो दूसरे धर्म अपना देने के बाद भी वे बंधकर नियमों का पालन करने पर विवश हुए। भय एक बहुत बड़ा हथियार है ऊँचे तबके के लोगों के लिए। यह एक माध्यम था जिसका प्रयोग कमजोर वर्ग के लोगों पर किया गया। ईसाई मिशनरी आदिवासी जन के स्वभाव से परिचित थे। अतः उनके संवेदनशीलता, विनम्रता का लाभ उठाते हुए प्रभु के नाम पर भय का संचार करना शुरू किया।

संविधान सबके लिए समान है। इसके अन्तर्गत नियम-कानून सबको समान अधिकार प्रदान करता है। बात यदि धर्म की आती है तो प्रत्येक धर्म के लोगों को अपने धर्म के अनुसार जीवनयापन करने की स्वतंत्रता भारतीय संविधान देता है। आदिवासी धर्म या सरना धर्म में धर्म का खुला रूप द्रष्टव्य है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने इच्छानुसार जीवनयापन करने की स्वतंत्रता है। यहाँ धार्मिक कट्टरता का कोई स्थान नहीं है। धर्म का न कोई बंधन है न ही नियंत्रण, सर्वत्र स्वतंत्रता व्याप्त है। किन्तु ईसाई धर्म के प्रवेश ने उनके धर्म को भी प्रभावित किया। मुख्य प्रभाव था धर्म में कट्टरता का आगमन। धर्म में कट्टरता प्रस्फुटित होने लगी।

धर्म का व्यवस्थित ढाँचा चरमराने लगा और संविधान में दिये गए धार्मिक अधिकारों को व्यवहार में नहीं लाया गया। प्रसिद्ध कवयित्री एवं लेखिका रोज केरकेट्टा जी ने एक घटना का जिक्र अपनी पुस्तक 'स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति' में किया जिसमें 2005 में रांची में एक स्त्री की बीमारी से मृत्यु हो गई। यद्यपि उसका जन्म ईसाई परिवार में हुआ, किन्तु उसने विवाह एक सरना धर्मावलम्बी युवक से किया। जब उनके बाल-बच्चे हुए, तब उनका बपतिस्मा करवाया। वह स्वयं भी चर्च जाती। पति ने उसे इच्छित धर्म मानने से कभी नहीं रोका। "दोनों को कभी अनुभव ही नहीं हुआ कि वे न तो सरना धर्मावलम्बियों द्वारा अस्वीकृत हैं और न ईसाई धर्मावलम्बियों द्वारा। पति ने यह मुगालता पाल लिया कि पत्नी चर्च जाती है, बच्चों को बपतिस्मा दिलाया है, इसलिए वह ईसाई है, उसने स्त्री को धर्म के संबंध में पूरी स्वतंत्रता दे रखी थी।"³⁵ एक दिन किसी बीमारी की वजह उस स्त्री की मृत्यु हो गई। उसकी इच्छा थी कि उसके मृत शरीर को कब्रिस्तान में दफनाया जाए। लेकिन दोनों धर्मों (सरना धर्म और ईसाई धर्म) के लोगों ने उसे अपने-अपने रीति के अनुसार दफनाने से मना कर दिया। अंत में उसके अपने पुत्र के मित्र के जमीन में दफनाया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि संविधान में जो अधिकार दिये गए, न ही उसका मान रखा गया और न ही धार्मिक आस्था अथवा नियम का मान रखा गया। यह सब धार्मिक कट्टरता का प्रभाव था जिसने सरना धर्म जैसे स्वच्छंद धर्म को प्रभावित किया। सरना धर्म में इस तरह की धार्मिक कट्टरता कभी विद्यमान नहीं थी न ही उसका अस्तित्व व्याप्त था। रोज केरकेट्टा जी का कहना है, "धार्मिक कट्टरता जब बढ़ता है, तब किसी भी समय यह उन्माद का रूप ले सकता है। सुदूर गाँव में ऐसे अनेक विवाह हो रहे हैं या संबंध बन रहे हैं। ऐसों के साथ लोग उठते-बैठते, खाते हैं। अतः कट्टरपन को ढीला होना ही होगा।"³⁶

भाषा को अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम माना गया है। व्यक्ति लिखकर, बोलकर अथवा सांकेतिक रूप में अपने विचारों को प्रकट करता है। कोई भी संस्कृति भाषा के आधार पर टिकी हुई होती है, भाषा संस्कृति की नींव है। कहते हैं कि यदि किसी संस्कृति को खत्म

करना हो तो सबसे पहले उसकी भाषा को समाप्त कर देना चाहिए। आदिवासी संस्कृति के साथ भी यही हुआ है। कुड़ुख, खड़िया, मुंडारी, हो, तुलु, भिली आदि भाषाएँ कई लाख लोगों द्वारा बोली जाती हैं, किन्तु इन भाषाओं को न तो संविधान में मान्यता प्राप्त है और न ही शिक्षा के क्षेत्र में इन भाषाओं को माध्यम के रूप में अपनाया गया है। धर्मांतरण के कारण आदिवासी बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर तो प्राप्त हुआ, किन्तु वह अवसर अपनी मातृभाषा से प्राप्त न होकर हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषा में शिक्षा प्रदान की जा रही है। इसका दुष्प्रभाव पड़ा जिसे दो रूपों में देख सकते हैं - एक वे अपनी मातृभाषा से कटते चले जा रहे हैं और दूसरा अन्य भाषा के शब्दों के उच्चारण और व्याकरण सीखने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है जिससे एक प्रकार का मानसिक दबाव उन बच्चों पर पड़ा। वे कक्षा में अपमानित होते हैं, कक्षा से अलग कर दिये जाते हैं जिससे वे अपनी पढ़ाई या तो पूरी नहीं कर पाते या फिर कक्षा में उनके साथ तुच्छ व्यवहार किया जाता है। इस कमी के कारण वे मंदबुद्धि साबित कर दिये जाते हैं। यदि उन्हें यही शिक्षा अपनी मातृभाषा में प्राप्त होने की सुविधा मिलती तो उन्हें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, उससे उबरने के रास्ते मिल जाते। महादेव टोप्पो का कथन इस संदर्भ के आलोक में देखा जा सकता है - “अगर एक आदिवासी को कम से कम आठवीं कक्षा तक हिन्दी या बंगला के साथ-साथ उसकी मातृभाषा में भी शिक्षा दी जाए तो उनके बच्चे हीनता की ग्रंथि से तो उबरेंगे ही, साथ ही वे तथ्यों को सरलता एवं तेजी से ग्रहण करेंगे क्योंकि तब तक वे अपनी भाषाओं के माध्यम से तथ्यों को शीघ्रता से ग्रहण करने की क्षमता और योग्यता प्राप्त कर चुके होंगे।”³⁷ ऐसे प्रतिकूल परिस्थिति में बच्चों के सीखने की प्रबल इच्छा पर पूर्ण विराम लग जाता है और वे हीन भावना से ग्रसित हो जाते हैं। इन हीनग्रंथियों से उबरना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा वे इसी भावना में रहेंगे कि वे दूसरों की दृष्टि में असभ्य हैं, बर्बर हैं, जंगली हैं जिनका अपना कोई अस्तित्व नहीं। अस्तित्व का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण है जो अपनेपन से ही प्राप्त हो सकता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धर्मांतरण से आदिवासी समाज अत्यधिक प्रभावित हुआ है, उनकी धार्मिक व्यवस्था प्रभावित हुई। प्रकृति से जीवन है, जीवन से संस्कृति बनी है जो परिवर्तनशील होता है। संस्कृति नए का सृजन करती है। अतः यह सृजनशील है। ईसाई धर्म में परिवर्तित होने के पीछे मुक्ति की कामना थी, जमींदारों के शोषण से मुक्ति, बंधुआ मजदूरी से मुक्ति, अपने घर की बहू-बेटियों के अपमान और दुर्व्यवहार से मुक्ति आदिवासी चाहते थे। अतः वे ईसाई धर्म में अंतरण हो गए, किन्तु अपनी संस्कृति को उन्होंने सहेज कर रखा। वस्तुतः शहरी जीवन व्यतीत करने वाले आदिवासियों की संस्कृति में थोड़ी भिन्नता अवश्य नजर आती है। पूर्वोत्तर प्रदेश के आदिवासी शिक्षित हो रहे हैं और अपनी भाषा, रीति-रिवाज एवं प्रथाओं को संरक्षित कर रहे हैं। उसी प्रकार झारखंड के आदिवासी अपने समुदाय की मान्यताओं को सहेजकर रखने का कार्य कर रहे हैं।

संदर्भ:

- ¹ तुमराम, डॉ. विनायक, आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, प्रथमावृत्ति: 2016, पृष्ठ: 19-20
- ² मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2013, पृष्ठ: 111
- ³ मुंडा, डॉ. रामदयाल, आदिवासी अस्तित्व और झारखंडी अस्मिता के सवाल, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002, पृष्ठ: 77
- ⁴ गुप्ता, रमणिका (संपा.), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2013, पृष्ठ: 54-55
- ⁵ वही, पृष्ठ: 51
- ⁶ टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, प्रथम संस्करण: 2013, पृष्ठ: 89
- ⁷ गुप्ता, रमणिका (संपा.), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2013, पृष्ठ: 39
- ⁸ वही, पृष्ठ: 54
- ⁹ कुमार, विनोद, समर शेष है, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण: 2005, पृष्ठ: 67
- ¹⁰ मीणा, गंगा सहाय (संपा.), आदिवासी साहित्य, जनवरी-मार्च 2015, वर्ष-1, अंक-1, पृष्ठ: 42
- ¹¹ वही, पृष्ठ: 43
- ¹² वही, पृष्ठ: 43
- ¹³ वही, पृष्ठ: 44
- ¹⁴ वही, पृष्ठ: 44
- ¹⁵ तुमराम, डॉ. विनायक, आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, प्रथमावृत्ति: 2016, पृष्ठ: 207
- ¹⁶ वही, पृष्ठ: 210
- ¹⁷ मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2013, पृष्ठ: 97

¹⁸ https://www.hmoob.in/wiki/Religious_text

¹⁹ टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, राँची, प्रथम संस्करण: अप्रैल 2013, पृष्ठ: 10-11

²⁰ मीणा, डॉ. गंगा सहाय (संपा.), आदिवासी साहित्य, जनवरी-मार्च 2015, वर्ष-1, अंक-1, पृष्ठ: 43

²¹ तेजिन्दर, काला पादरी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण: 2002, पृष्ठ: 47

²² टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फ़ाउंडेशन, राँची, प्रथम संस्करण: अप्रैल 2013, पृष्ठ: 83

²³ पंकज, अश्विनी कुमार, माटी माटी अरकाटी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पहला संस्करण: 2016, पृष्ठ: 223

²⁴ तलवार, डॉ. वीर भारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच एक एकटीविस्ट के नोट्स, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण: 2012, पृष्ठ: 226

²⁵ तेजिंदर, काला पादरी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण: 2002, पृष्ठ: 43

²⁶ वही, पृष्ठ: 44-45

²⁷ टोप्पो, महादेव, सभ्यों के बीच आदिवासी, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2018, पृष्ठ: 52-53

²⁸ गुप्ता, रमणिका (संपा.), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2013, पृष्ठ: 59

²⁹ लुगुन, अनुज (संपा.), आदिवासी अस्मिता प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण: 2018, पृष्ठ: xi

³⁰ https://hi.unionpedia.org/i/ओलचिकि_लिपि

³¹ तलवार, डॉ. वीर भारत, झारखंड के आदिवासियों के बीच एक एकटीविस्ट के नोट्स, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, दूसरा संस्करण: 2012, पृष्ठ: 240

³² तेजिंदर, काला पादरी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण: 2002, पृष्ठ: 103

³³ वही, पृष्ठ: 45

³⁴ वही, पृष्ठ: 47

³⁵ केरकेट्टा, रोज, स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति, नॉशन प्रेस, प्रथम संस्करण: मार्च 2021, पृष्ठ:

16

³⁶ वही, पृष्ठ: 17

³⁷ गुप्ता, रमणिका (संपा.), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2013, पृष्ठ: 43-44